सितंबर १९८८ में हिंदी "विपश्यना" पत्रिका में प्रकाशित

धम्मवाणी

न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
कम्मुना वसलो होति, कम्मुना होति ब्राह्मणो॥
वसलसुत्त - २७.

न जाति से कोई वृषल [चांडाल] होता है, न जाति से कोई ब्राह्मण। कर्म से ही कोई वृषल होता है, कर्म से ही ब्राह्मण।

बुद्ध और धर्म

[६]

किसी सम्यक् सम्बुद्ध द्वारा प्रकाशित प्रसारित शुद्ध धर्म समय बीतते बीतते विकृत हो जाता है तो विलुप्त ही हो जाता है। ऐसी अवस्था में जनसमाज धर्म का सही अर्थ ही भूल जाता है। उसे धारण करना तो दूर की बात रही।

किसी व्यक्ति में सामान्य शील-सदाचार का भी नामोनिशान नहीं होता, चित्त-संयम और चित्त-विशुद्धि की तो बात ही क्या? परन्तु ऐसा व्यक्ति किसी जाति विशेष में जन्म पा लेने के कारण जात्याभिमान से भर उठता है। जन्म के कारण ही अपने आप को धार्मिक मान बैठता है। अन्य जाति वालों को हीन मानकर उनसे घृणा करता है। उनकी छाया भी उसे असह्य हो उठती है। धर्म अपनी अवनति की चरम सीमा पर पहुँच जाता है, जबकि एक जाति विशेष के लोगों द्वारा रचे हुए धर्म शास्त्र यह घोषणा करते हैं कि उनकी जाति का व्यक्ति कितना ही दुश्शील, दुराचारी और दुर्गुणी क्यों न हो, लेकिन वह पूजन और मान-सम्मान का अधिकारी है। इसके विपरीत किसी अन्य जाति का व्यक्ति कितना ही शील-सदाचारी हो, सद्गुणी हो, सद्ज्ञानी हो परन्तु वह पूज्य नहीं, बल्कि पशुओं की तरह प्रताड़ित किए जाने का अधिकारी है। ऐसे व्यक्तियों के लिए जातिवाद ही धर्म बन गया है। धर्म, धर्म नहीं रहा।

इसी प्रकार कोई व्यक्ति किसी संप्रदाय-विशेष में जन्मता है और अपने को इस संप्रदाय-विशेष का सदस्य मानकर अभिमान से भर उठता है। अपने आप को बड़ा धार्मिक मानता है। भले उसमें शील-सदाचार का नामोनिशान न हो, चित्त-संयम और चित्त-विशुद्धि जरा भी न हो। इतना ही नहीं, वह अपने संप्रदाय के गए गुजरे से गए गुजरे को अच्छा आदमी मानता है और किसी दूसरे संप्रदाय के शीलवान, सदाचारी, गुणवान व्यक्ति को भी हेय मानता है। उसके लिए अपना संप्रदाय ही धर्म बन गया है। धर्म, धर्म नहीं रहा।

कोई व्यक्ति अपने कुल में परंपरागत पूजे जानेवाले किसी देवी, देवता, ईश्वर, ब्रह्म का विधिवत पूजन-अर्चन कर लेता है। पर्व-त्योहार मना लेता है। व्रत-उपवास कर लेता है। परंपरागत कर्मकांड कर लेता है। तीर्थाटन कर लेता है। किसी नदी, पोखर या सागर में स्नान कर लेता है और अपने आप को इसी कारण बड़ा धार्मिक व्यक्ति मान लेता है। भले वह दुश्शील हो, दुराचारी हो, असंयमी हो और मैले चित्तवाला हो। अपनी परंपरा द्वारा मान्य कर्मकांडों को पूरा कर लेने के मिथ्या अभिमान में दूसरों के परंपरागत कर्मकांडों को हीन समझता है। उस व्यक्ति के लिए अपनी परंपरावाले कर्मकांड ही धर्म बन जाते हैं। धर्म, धर्म नहीं रहता।

किसी व्यक्ति की पत्नी मर जाय अथवा उसकी संपत्ति नष्ट हो जाय अथवा उसका अपने परिवारवालों से झगड़ा हो जाय अथवा किसी क्षणिक भावावेश के समय उसमें मुमुक्षुभाव ही जाग जाय और वह घर छोड़कर संन्यासी हो जाय तो इसी कारण अपने को महान मानने लगता है। गृहस्थों को, घर न छोड़नेवालों को तुच्छ मानता है। उनसे घृणा करता है। इन गृहत्यागनेवालों में भी कोई पीला चोला पहनता है, कोई सफेद, कोई काला अथवा कोई नग्न ही रहता है। कोई सिर के बाल बढ़ाता है, कोई दाढ़ी-मूंछ बढ़ाता है और कोई उन्हें मुड़ाता है और कोई नुचवाता है और एक बाह्य आडम्बरवाला व्यक्ति दूसरे बाह्याडम्बरवालों को हल्का मानता है। भले उसमें शील-सदाचार, चित्त-संयम और चित्त-विशुद्धि का नाम भी न हो पर वह अपने आप को बहुत धर्मवान मानता है। औरों से घृणा करता है। अपने भीतर अहं जगाता है। वह वेश-भूषा और बाह्याडम्बर को ही धर्म मान बैठता है। शील-सदाचारी होना, चित्तसंयमी और चित्तविशुद्ध होना उसके लिए अनिवार्य नहीं रह जाता। उसके लिए धर्म, धर्म नहीं रह जाता।

इसी प्रकार एक व्यक्ति किसी एक प्रकार की दार्शनिक

मान्यता मानता है। दूसरा दूसरे प्रकार की। कोई आत्मवादी है, कोई नैरात्मवादी। कोई ईश्वरवादी है कोई निरीश्वरवादी। कोई सगुण-साकारवादी है, कोई निर्गुण-निराकारवादी है। कोई त्रैतवादी, कोई द्वैतवादी, कोई अद्वैतवादी, कोई अद्वयवादी, कोई द्वैताद्वैतवादी, कोई विशिष्टाद्वैतवादी। यों भिन्न भिन्न मतवादी व्यक्ति अपने दार्शनिक मतवाद को ही धर्म मानता है और उस उस मत को केवल मानने के कारण ही अपने आपको धर्मवान मान लेता है। चाहे उसमें शील-सदाचार का नामोनिशान न हो । चाहे उसमें चित्त की न एकाग्रता हो, न निर्मलता। उसके लिए धर्म, धर्म नहीं रहा।

यों जाति, संप्रदाय, वेशभूषा, कर्मकांडअथवा दार्शनिक मान्यता को ही धर्म माननेवाला व्यक्ति अक्सर शुद्ध धर्म से वंचित रह जाता है। उनमें से ही कोई ऐसा भी निकलता है जो बुरे से बुरा कामकरते हुए भी नहीं हिचकता।'मेरा धर्म खतरे में है' 'मेरे धर्म की रक्षा करनी है' यों धर्म के नाम पर धर्मान्धता और भावावेश जगाकर किसी अन्य संप्रदाय के नितांत निर्दोष व्यक्ति की हत्या करते हुए, उसका खून बहाते हुए, आगजनी करते हुए, बलात्कार करते हुए जरा भी नहीं हिचकिचाता।बल्कि इस दुष्कर्म करने में बड़ा पुण्य, बड़ा शबाब, बड़ा गौरव मानता है। यों छिलके प्रमुख, प्रबल हो जाते हैं और शुद्ध धर्म का सार छूट जाता है। उसका पालन किया जाना बिल्कुल छूट जाता है। अतः धर्म के नाम पर पाप फैलता है, दुराचार फैलता है।

ऐसे समय कोई व्यक्ति बुद्ध होता है अथवा कोई बोधिसत्व बुद्ध बनने के मार्ग पर आरूढ़ होता है तो शुद्ध सार्वजनीन धर्म की पुनर्स्थापना करता है। धर्म के नाम पर भूले-भटके लोगों को सही धर्म का रास्ता दिखाता है, लोक-मंगल करता है, लोक कल्याण करता है। कोई सचमुच बुद्ध होगा तो शुद्धं सार्वजनीन धर्म की ही स्थापना करेगा।बौद्ध धर्म की नहीं, बौद्ध संप्रदाय की नहीं। अन्यथा वह बुद्ध नहीं होगा। किसी संप्रदाय की अथवा किसी मत मतांतर की स्थापना करनेवालों में से एक होगा।

शुद्ध धर्म की स्थापना करेगा तो सार और छिलके का भेद बतायेगा, सार ग्रहण करना सिखायेगा और छिलकों को निस्सार समझकर त्यागना सिंखायेगा। धर्म का सार है शील-सदाचार का जीवन, चित्त पर संयम और चित्त की शुद्धता। धर्म के सिद्धान्तों को स्वीकार कर लेना मात्र ही धर्म नहीं है। धर्म को धारण करनेवाला व्यक्ति ही सही माने में धार्मिक है। अतः कोई बुद्ध होगा तो धर्म के इस सार को केवल स्वीकार करना ही नहीं सिखायेगा बल्कि उसे धारण करना सिखाएगा।

समाज में जाति पांति के आधार पर ऊँच-नीच की मान्यता शुद्ध धर्म के बिल्कुल विरुद्ध होती है, यद्यपि शुद्ध धर्म के क्षेत्र में भी कोई व्यक्ति ऊँचा और कोई नीचा अवश्य होता है। पर उसको मापने का मापदंड यही है कि जो व्यक्ति धर्म धारण करने में जितना अधिक सबल हुआ. वह व्यक्ति उतना ही ऊँचा है। जो व्यक्ति धर्म धारण करने में जितना दुर्बल है उतना ही नीचा है। परन्तु जो व्यक्ति धर्म धारण करने में दुर्बल होने के कारण औरों से नीचा है, उसे छूट है, पूरी सहूलियत है कि वह धर्म धारण करने में सबल बने; याने शीलवान, समाधिवान और प्रज्ञावान बने और इस प्रकार ऊँचा बने। अपने चित को नितांत निर्मल करता हुआ वीतराग बने, अरहन्त बने, बुद्ध बने और धर्म के क्षेत्र में सबसे ऊँचा बने, सबका पूज्य बने। ऐसा बनने में उसके लिए कोई बाधा नहीं, रुकावट नहीं, मुमानियत नहीं। जाति या संप्रदाय के बाड़े उसे रोक नहीं सकते।

यदि ऐसा है तो ही धर्म शुद्ध धर्म है। धारण करने योग्य है। सर्वजन हितकारी धर्म है।

आओ साधको!ऐसा सार्वजनीन मांगलिक धर्म धारण करें और अपना तथा औरों का मंगल साधें।

मंगल मित्र,

स. ना. गो.

प्रेरक प्रसंग

[६]
वस्त्राभूषण की गठरी

भगवान गौतम बुद्ध ने सम्यक् सम्बोधि प्राप्त कर ऋषिपत्तन मृगदाय में पहला वर्षावास किया। वहीं ६० साधकों को अर्हंत अवस्था तक की साधना करवाकर बहुजन हित-सुख के लिए उन्हें विभिन्न दिशाओं में भेजा। स्वयं भी पूर्व की ओर चल पड़े। गया के काश्यप बन्धुओं को मिथ्या कर्मकांडों से मुक्ति दिलाकर मुक्तिदायिनी साधना सिखाई और अपना पूर्व वचन निभाने के लिए मगध नरेश को धर्म सिखाने राजगृह गए। महाराज बिम्बसार शुद्ध धर्म से प्रभावित होकर भगवान के अनुयायी हो गए। बिम्बसार सुद्धोधन के मित्र थे। महाराज सुद्धोधन को अपने पुत्र की अमूल्य उपलब्धि की सूचना मिली तो वह भावविभोर हो उठे। उन्होंने पुत्र को कपिलवस्तु आमंत्रित किया । भगवान बहुत बड़ी संख्या में भिक्षुओं को साथ लेकर लोक-कल्याणहित कपिलवस्तु गए। कपिलवस्तु के शाक्यवंशी भगवान के उपदेशों से अत्यंत प्रभावित हुए। बहुत बड़ी संख्या में सद्धर्म के पथ पर आरूढ़ हुए। गृही जीवनकाल का छोटा भाई राजकुमार नंद प्रव्रजित हुआ। पुत्र राहुल प्रव्रजित हुआ।

कुछ दिनों पश्चात् भगवान ने शाक्य देश छोड़कर समीप के मल्लदेश की ओर प्रस्थान किया। मल्लों के अनूपिया नामक कस्बे में कुछ दिनों रुके। भगवान के चले जाने के बाद भी कपिलवस्तु में उनके धर्मोपदेशों की बहुत चर्चा होती रहती थी। लोगों में साधना के प्रति धर्म संवेग जागता रहता था। अनेक शाक्य राजकुमार घरबार छोड़कर भिक्षु बनकर साधना के लिए भगवान के साथ चले गए थे। जो बचे थे उनमें भी सद्धर्म के प्रति रुचि जाग रही थी। उनमें के छह राजवंशियों ने मल्ल देश जाकर

भगवान की शरण ग्रहण करने का निर्णय किया। शाक्य राजा भद्दिय, राजकुमार अनिरुद्ध, आनंद, भृगु, किंबिल और देवदत्त राजसेवक उपालि को साथ लेकर अनूपिया की ओर चल पड़े। उपालि राजघराने का नाई था। चिरकाल से राजघराने की सेवा किया करता था। गृही राजकुमार सिद्धार्थ गौतम के भी बाल काटता और उन्हें सजाता संवारता था। रास्ते में सेवा टहल के लिए राजपुत्रों ने उपालि को साथ ले लिया था।

अपने राज्य की सीमा को पार कर जब मल्लराज्य की सीमा में पांव रखा तो छहों राजपुत्रों ने अपने अपने वेशकीमती वस्त्राभूषण उतार दिए और गृहत्यागियों के अनुरूप सादे बाने पहन लिए। उन मूल्यवान वस्त्राभूषणों की एक गठरी बनाई और नाई उपालि को देते हुए कहा, "भणे, यह तुम्हारे लिए है । जीवन निर्वाह के काम आयेगी। इसे लेकर अब तुम लौट जाओ! हम भगवान गौतम बुद्ध के पास प्रव्रजित होने जा रहे हैं।"

उपालि अवाक् रह गया। इतने आभूषण! उसके अपने ही नहीं, आगे की एक-दो पीढ़ियों के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त थे । प्रसन्नचित्त उपालि मालिकों को नमस्कार कर लौट चला। थोड़ी दूर चलने पर उसे होश आया-जब घर लौटूंगा तो लोगों को संदेह होगा कि कहीं राजपुत्रों की हत्या कर वाकर तो मैंने यह मालमत्ता नहीं हथिया लिया! शाक्यवंशी बड़े चंड स्वभाव के होते हैं। इसी संदेहवश मुझे सूली पर चढ़ा सकते हैं । मेरा शिर उतार सकते हैं। ना बाबा ना, ऐसा धन मुझे नहीं चाहिए। मैं अपनी सामान्य मेहनत-मजदूरी द्वारा ही पेट पालूंगा, यह वस्त्राभूषण मेरे काम के नहीं। वह गठरी राह के एक पेड़ की शाखा पर लटका दी और उस पर एक सूचना लिखकर चिपका दी –"यह गठरी जिस राहगीर को मिले उसी की है । वह इसका निःसंकोच उपभोग करे।"

इतनी मूल्यवान गठरी जिस किसी को प्राप्त होगी, वह निहाल हो जायेगा। अपना भाग्य सराहेगा। यों प्रमुदित चित्त से शाखा पर टंगी उस गठरी को देखते हुए उपालि के मन में एक बात बिजली की तरह कौंधी-'ये सुख-संपदा-संपन्न राजपुत्र केवल यही वस्त्राभूषण नहीं, प्रत्युत राजघराने के सारे ऐश्वर्य-आराम को, विलास-वैभव को त्यागकर भिक्षु-जीवन जीने जा रहे हैं। अवश्य ही उस अकिंचन जीवन में राजवैभव से कहीं अधिक सुख होगा। भगवान बुद्ध जितने दिन कपिलवस्तु में रहे, उनकी बड़ी कीर्ति-प्रशंसा सुनी। अवश्य ही उनका मार्ग परम सुख का मार्ग है। मुझे भी घरबार छोड़कर उसी मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।'

राजपुत्रों द्वारा त्यागी इस गठरी ने उपालि नाई के मनमें तीव्र धर्म-संवेग जगाया। वह उल्टे पाँव तेज गति से लौट आया और उन छहों राजपुत्रों से आ मिला – "मैं भी आपके साथ भगवान बुद्ध की शरण ग्रहण करूंगा। उनके अनुशासन में भिक्षु का जीवन जिऊंगा और मनुष्य-जीवन सार्थक करूंगा।" राजपुत्र खुश हुए। उपालि को साथ ले लिया। सातों अनूपिया के मल्लों द्वारा अर्पित विहार में पहुँचे, जहाँ भगवान भिक्षुओं के साथ टिके हुए थे। सब ने भगवान को नमस्कार कर प्रव्रज्या मांगी। जब भगवान उन्हें प्रव्रजित करने के लिए तैयार हुए तो उन छहों राजकुमारों ने कहा, "भगवान पहले उपालि नाई को प्रव्रजित कीजिए, उसके बाद हमें। ऐसा होने पर प्रव्रजित जीवन में यह हमारा ज्येष्ठ होगा, पूज्य होगा। भिक्षु नियमों के अनुसार हमें इसे झुककर नमस्कार करना होगा। अपने ही पूर्व सेवक नाई को झुककर अभिवादन करेंगे तो ही हमारा अहंकार टूटेगा। भगवान! राजपुत्रों को बड़ा अभिमान होता है और शाक्यवंशी राजपुत्रों का तो कहना ही क्या? सभी वर्णों में क्षत्रिय श्रेष्ठ और क्षत्रियों में भी हम शुद्धरक्त इक्ष्वाकु वंशीय शाक्य क्षत्रिय परम श्रेष्ठ! यह अभिमान कैसे टूटे? इसके टूटे बिना धर्म कहाँ? मुक्ति कहाँ?

भगवान ने मुस्कराकर उनकी बात मान ली। इन शाक्यवंशी राजपुत्रों के गृहत्यागी जीवन में भिक्षु उपालि अग्र हुए । समय पाकर भदन्त उपालि भिक्षु-नियमों के विनय-क्षेत्र में सभी भिक्षुओं में अग्र हुए।

उपसंपदा प्राप्त होने पर एक बार उपालि ने भगवान से साधना की विधि सीखकर प्रार्थना की-"भन्ते भगवान! मुझे अरण्यवास की आज्ञा दीजिए।" भगवान ने कहा, "अरण्य में जाकर साधना करने से तेरा एक पक्षीय ज्ञान बढ़ेगा, लेकिन यहीं विहार में मेरे पास रहकर साधना करने से उभयपक्षीय ज्ञान बढ़ेगा। तुम ग्रन्थधुर और विपश्यनाधुर यानी परियत्ति और पटिपत्ति यानी धर्म का सैद्धान्तिक पक्ष और व्यावहारिक पक्ष दोनों में निपुण हो जाओगे, परिपूर्ण हो जाओगे। अतः अरण्य न जाकर विहार में ही रहो।"

भिक्षु उपालि ने भगवान का कहना माना। उनके सान्निध्य में विहार में ही रहकर विपश्यना करते हुए अर्हन्त अवस्था प्राप्त की। साथ ही भगवान के पास रहते हुए भिक्षुओं के लिए बनाए गए विनयशील यानी अनुशासन-नियमों की पूरी जानकारी प्राप्त की और उनका पालन किया। उपालि भगवान के प्रमुख शिष्यों में से एक हुए। उपालि की धर्मलब्धि से संतुष्ट हो भगवान ने उसे विनयधर भिक्षुओं में सर्वश्रेष्ठ घोषित किया। अग्र की उपाधि से विभूषित किया। जन्म से न कोई ऊँची जात का होता है न नीची जात का। ऊँचा या नीचा, बड़ा या छोटा कर्म से ही होता है। यह बात केवल सैद्धान्तिक स्तर पर स्वीकार कर लेना आसान है, पर इसे व्यवहार में उतारना कठिन है। जो सद्धर्म के रास्ते चलता है, वह इसे व्यवहार में उतारता है। जन्म से शूद्र माना जानेवाला उपालि कर्म से ब्राह्मण बन गया। ज्येष्ठ-श्रेष्ठ बन गया। पावन-पूज्य बन गया।

किसी एक हर्ष-उल्लास के समय महास्थविर उपालि ने यह उदान कहा –

सद्धाय अभिनिक्खमाय नवपब्बजितो नवो।
मित्ते भजेय्य कल्याणे सुद्धाजीवे अतन्दिते॥

श्रद्धापूर्वक गृहत्यागकर जो तरुण प्रव्रजित हुआ है उसे चाहिए कि ऐसे कल्याणमित्र की संगति करे जो कि निरालस और शुद्ध आजीविका का जीवन जीता हो।

सद्धाय अभिनिक्खम्म नवपब्बिजितो नवो।
संघस्मि विहरं भिक्खु सिक्खेथ विनयं बुधो॥

श्रद्धापूर्वक गृहत्यागकर जो तरुण प्रव्रजित हुआ है उस समझदार को चाहिए कि वह भिक्षु संघ में रहता हुआ विनय के नियमों को सीखे।

सद्धाय अभिनिक्खम्म नवपब्बजितो नवो।
कप्पाकप्पेसु कुसलो चरेय्य अपुरक्खतो॥

श्रद्धापूर्वक गृहत्यागकर जो तरुण प्रव्रजित हुआ है उसे चाहिए कि उचित अनुचित को समझते हुए, आचरण में उतारते हुए धर्म का पालन करे।

महास्थविर उपालि स्वयं युवावस्था में श्रद्धापूर्वक गृहत्यागकर भगवान बुद्ध जैसे कल्याणमित्र के सान्निध्य में रहे। संघाराम में रहे। संघाराम में रहकर भिक्षु-नियमों को भलीभांति सीखा और फिर निष्ठापूर्वक धर्म धारणकर मुक्त हुए। इस हर्षोद्गार द्वारा अर्हंत उपालि यही सीख औरों को भी देते हैं।

शाक्य राजकुमारों द्वारा त्यागी वस्त्राभूषण की गठरी नापित उपालि के लिए धर्म-धारण की प्रेरणा बनी। विमुक्त महास्थविर उपालि की उल्लासभरी वाणी अनेकों के लिए प्रेरणा का कारण बने । इसी में मंगल-कल्याण निहित है।

कल्याण मित्र

स. ना. गो.

दोहे धर्म के

जाति-वर्ण के नाम पर, फैला अत्याचार।
सदाचार गर्हित हुआ, पूजित मिथ्याचार॥
केवल मां की कोख से, पूज्य हुआ ना कोय।
सदाचरण में रत रहे, सही पूज्य है सोय॥
ऊंच नीच के भेद में, डूबा सकल समाज।
धर्मराज दुर्बल हुआ, सबल पाप का राज॥
जब जब मनुज समाज में, जाति प्रमुख हो जाय।
घोर पतन हो धर्म का, पाप प्रबल हो जाय॥
धन-संपद का, गोत्र का, कैसा चढ़ा गुमान!
शीलवान सत्पुरुष का, दुष्ट करे अपमान॥
जात-पांत के रोग से, हुआ हाल बेहाल।
व्याकुल ही व्याकुल रहा, अब तो होश संभाल॥

केमिटो टेक्नोलॉजीज (प्रा.) लिमिटेड
८, मोहता भवन, ई-मोजेस रोड, वरली, मुंबई-४०० ०१८
फोनः २४९३ ८८९३, फैक्सः २४९३ ६१६६
Email: arun@chemito.net
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

जात-पांत अर गोत्र स्यूं, पूज्य हुवै ना कोय।
जो सद्गुण धारण करै, सही पूज्य है सोय॥
जात-पांत री कोढ़ मँह, बरण-गोत्र री खाज।
जन जन व्याकुल हो उठ्ये, दुखियो सकल समाज॥
ऊंच-नीच रै मोह स्यूं, जग्यो अंधविस्वास।
पाप-ताप फैल्यो इसो, हुयो धरम रो नास॥
टुकड़ा टुकड़ा मँह बँट्ये, बिखर्यो सुखी समाज।
खंड खंड भारत हुयो, हुयो पाप को राज।
जात-पांत बिसपान कर, खोया होस हवास।
मदहोसां आंधो र वै, जाग्यां जगै प्रकास॥
जात-पांत की मान्यता, ऊंच-नीच को भेद।
आकुल-व्याकुल ही र वै, दुख जागै अनमेद॥

एक साधक
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादकः राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) २४४०८६, २४४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७.

वार्षिक शुल्क रु. ३०/-, US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. ५००/-, US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६**/७१. Regn. No. **LII/REN/RNP-46/2006-08**

Licenced to post w**ithout Prepayment of postage** -- Licence number-- **LII/RNP-WPP-03**
Posting day- **Purnima of Every Month,** Posted at **Igatpuri-422403,** Dist. Nashik (M.S.)

If not delivered please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
फोन : (०२५५३) २४४०७६, २४४०८६
फैक्स : (०२५५३) २४४१७६
e-mail: info@giri.dhamma.org
Website: www.vri.dhamma.org